
मैं-ही-मैं
(चतुःश्लोकी भागवत)
स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी

मैं-ही-मैं

(चतुःश्लोकी भागवत)

✿

प्रवचन :

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

(सं. : पं. सोमदत्त द्विवेदी)

✿

प्रकाशक :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालावार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो. : 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

प्रथम संस्करण : 1100
गुरुपूर्णिमा, 22 जुलाई 2013

द्वितीय संस्करण : 500
दिसम्बर 2018

●

मूल्य : 40/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम, वाराणसी - 221001
मो. : 9415624020

प्रकाशकीय

चतु:श्लोकी भागवतका उपदेश भगवान् नारायणने चतुर्मुख ब्रह्माको करुणा करके किया; वैसे ही परमपूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजीने जन सामान्य जिज्ञासुओं, साधकों, भक्तों पर अनुकम्पा करते हुए 'चतु:श्लोकी भागवत'के अर्थोंको सरल, सरस कर दिया।

चि. सोमदत्त द्विवेदीने टेपसे सुनकर लिपिबद्ध कर दिया, प्रकाशन व्यय हेतु अनुदान महाराजश्रीकी कृपापात्र उषा, शान्ता, ज्योति ठाकुरदास महतानी, मुम्बईने किया-

एतदर्थ हम आभारी हैं-

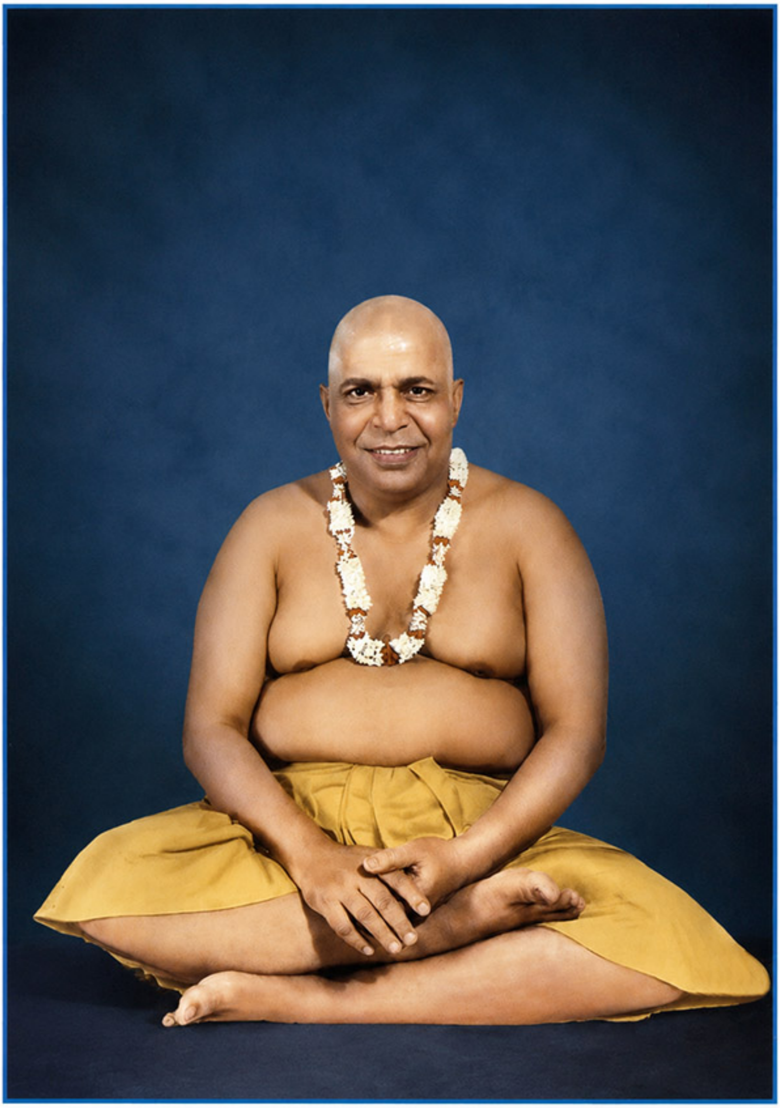
प्रस्तुत है चतु:श्लोकी भागवत 'मैं-ही-मैं'के रूपमें- सुधीजन लाभ लें।

-सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
मुम्बई / वृन्दावन

मैं-ही-मैं

चतुःश्लोकी भागवत

अनुक्रमणिका



स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वती

मैं-ही-मैं

(चतुःश्लोकी भागवत)

।। श्री गणेशाय नमः ।।

।। श्री सद्गुरुभ्यो नमः ।।

नारायण! नारायण!! नारायण!!! नारायण!!!!

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।

(श्रीमद्भागवत 2.9.32-35)

सृष्टिके पूर्व केवल मैं–ही–मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं–ही–मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ॥३२॥

वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिवर्चनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश–मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझना चाहिए॥३३॥

जैसे प्राणियोंके पंचभूतरचित छोटे–बड़े शरीरोंमें आकाशादि पंचमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ॥३४॥

यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं–इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे, और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है–इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित है, वही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है॥३५॥

॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः ॥

नारायण! चतुःश्लोकीका पाठ करते हैं, रोज-रोज करनेसे इसका संस्कार बहुत अच्छा हो जायेगा, केवल चार श्लोकका* ही पाठ करें-

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।

(श्रीमद्भागवत 2.9.32-35)

यही चार श्लोक हैं, जिनको चतुःश्लोकी भागवत कहते हैं। इन्हीं चार श्लोकोंका उपदेश नारायणने ब्रह्माको किया और ब्रह्माने नारदको, नारदने व्यासको और व्यासने इन चार श्लोकोंका व्यास किया। माने इनको फैलाया। आप जानते हैं कि धरतीका व्यास कितना है? धरतीका व्यास माने विस्तार!

---

* जैसे माण्डूक्योपनिषद्वाला ब्रह्म चतुष्पाद है। 'अयमात्मा चतुष्पाद्' (2) अथवा 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' ऋग्वेद (10.90.3) वैसे ही उसकी चार-चार अवस्थाएँ हैं- विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय। वेदान्तमें चार-चारकी महिमा ज्यादा है। आप देख लें- ब्रह्मसूत्रमें चार अध्याय हैं, एक एक अध्यायमें चार-चार पाद हैं। उनके निरूपणकी पद्धति भी चार-चार होती है। यहाँ श्रीमद्भागवतमें भी चार श्लोकोंमें परमात्माका निरूपण किया गया है। इसलिए उसे चतुःश्लोकी भागवत बोलते हैं। चार मुखवाले ब्रह्मा भी होते हैं। चार वेद भी होते हैं। श्रीमद्भागवतमें चार वेद हैं, ऐसा समझो। इसमें चार तत्त्वोंका वर्णन है। एक तो परमात्मतत्त्व-ब्रह्मतत्त्वका वर्णन है। दूसरे मायातत्त्वका वर्णन है। तीसरे जगत्-तत्त्वका वर्णन है और चौथे आत्मतत्त्वका वर्णन है। इन चार वस्तुओंका वर्णन चार श्लोकोंमें है। (भागवत दर्शन : 1, 2.9. पृष्ठ 36)

इन्हीं चार श्लोकोंका व्यास करनेके कारण व्यासजीका नाम व्यास पड़ा। वेद भी चार हैं, उन वेदोंका व्यास करनेके कारण व्यासका नाम वेदव्यास पड़ा! यह जो प्रसंग है उसके सम्बन्धमें थोड़ी भूमिका आपको सुनाते हैं-

नारायण हैं अन्तर्यामी। मनुष्यके हृदयमें ही जिनका निवास-स्थान है-उनका नाम है नारायण। *'नारं अयनं अस्य' 'नरस्य हृदयं नारं'*-मनुष्यके हृदयका नाम नार है, नरका दिल 'नार' है और वही है निवास स्थान जिनका, उनको बोलते हैं-नारायण। माने बीजमें, कारणवारिमें जो शयन करते हैं उनको बोलते हैं-नारायण।

जैसे अण्डेमें पानी होता है, वह अण्डेका समुद्र है कि नहीं? अण्डेमें पानीका एक समुद्र है और उसमें एक चैतन्य भरपूर है। एक चैतन्य वह है जो अण्डेके पानीमें स्यूत है और एक चैतन्य वह है जो अण्डेमें-से छोटे-छोटे जीव प्रगट होते हैं तो उनमें रहता है। और एक चैतन्य वह है जिसमें वैसे-वैसे हजारों अण्डे रहते हों! तो हजारों-लाखों अण्डे जिस चैतन्यमें रहते हैं, वह तो अधिष्ठान रूप ब्रह्म है-माने महाकाश और अण्डेवालेको मठाकाश समझो।

जो अण्डेके सम्पूर्ण कणोंमें पूर्ण चैतन्य है और वह जीव है, परन्तु उन कणोंको और अण्डोंको पृथिवीसे हटा कर केवल शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिसे देखें तो वह शुद्ध चैतन्य ही ब्रह्म है, शुद्ध चैतन्य ही नारायण है और वह शुद्ध चैतन्य ही आत्मा है, जीव है-उन दोनोंमें कोई फर्क नहीं होता है। तो नारायण अन्तर्यामी।

और जब बुद्धि प्रगट हो जाती है तो उस बुद्धिमें बैठ करके जो अपने संकल्पके द्वारा निर्माण करते हैं उनका नाम ब्रह्मा। मनको नारद

बोलते हैं और वाक्‌को व्यास बोलते हैं। जब व्यक्तित्व आ गया तो शुक हो गया। शुक शब्द प्रधान है।

शुक शब्द हैं, वाक् व्यास हैं, ब्रह्मा मन हैं और अन्तर्यामी नारायण हैं–यह सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय है माने अन्तर्यामी नारायणसे, बुद्धि-ब्रह्माको, बुद्धि ब्रह्मासे मन-नारदको, मन-नारदसे वाक्-व्यासको और वाक्-व्याससे शब्द-शुकको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है- आपके भीतर नारायण बैठे हुए हैं। आप तपश्चर्य, तपस्याके द्वारा इनसे अपना सम्बन्ध बनावें। यह भीतर बैठकर जो उपदेश आपको करते हैं वह सुनायी पड़ेगा।

ऐसे भी समझो कि वैखरी वाणी व्यास हैं, और मध्यमा वाणी नारद हैं और पश्यन्ती वाणी ब्रह्मा हैं और परा वाणी नारायण हैं तो ब्रह्मा शुकदेव शब्दगत व्यक्ति हैं।

इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टिसे भी श्रीमद्भागवतका उपदेश होता है, और आधिदैविक दृष्टिसे भी होता है। अधिभूत दृष्टिसे भी कि अमुक कालमें द्वापरान्तमें, अमुक कुलमें, अमुक-व्यक्तिने यानि शुकदेव नामक अवधूतसे परीक्षित नामक सम्राटको श्रीमद्भागवतका उपदेश किया।

आधिभौतिक परम्परा है-शुकदेव अवधूत परीक्षित राजा। आधिदैविक परम्परा है-नारायण, ब्रह्मा, नारद, व्यास और जो अन्तरंग है-अन्तर्यामी, बुद्धि, मन, वाक् यह आध्यात्मिक परम्परा है। हमारे शरीरमें आध्यात्मिक है, जो इतिहासमें हुआ वह आधिभौतिक है और दैविक जगतमें जो नारायण-ब्रह्म आदि रहते हैं वह आधिदैविक है।

इस प्रकार आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीनों प्रणालीसे श्रीमद्भागवतका उद्गम होता है।

एक सम्राट और एक अवधूत-दोनों जिसके श्रवण और श्रावणमें संलग्न हैं-इसका अर्थ है कि त्यागी, वैरागी अवधूतके लिए भी यह भागवत आदरणीय है और परीक्षित जैसे सम्राटके लिये भी संदेश लेकर भागवत आदरणीय है-दोनों ही इसके अधिकारी हैं-यह परमहंस संहिता है।

इसके आरम्भमें राजा परीक्षितने प्रश्न किया था, शुकदेवजी महाराजसे, दूसरे स्कन्धमें ही इसका प्रसंग है। पहला स्कन्ध तो अधिकारी स्कन्ध है, राजा परीक्षितकी कथा है उसमें और दूसरा स्कन्ध साधन स्कन्ध है, तीसरा-सर्ग, चौथा-विसर्ग, पाँचवा-स्थान, छठा-अनुग्रह, सातवाँ-ऊति, आठवाँ-मनवन्तर, नौवाँ-ईशानुकथा, दशवाँ-निरोध, ग्यारहवाँ-मुक्ति और बारहवाँ-आश्रय।

दूसरे स्कन्धमें परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न किया कि महाराज आप जो आत्माका वर्णन करते हैं वह आत्मा तो निराकार है-'अधातुना'-आत्माके वर्णनमें आया कि धातुसे इसका आरम्भ नहीं होता है, माने देह तो हवा, मिट्टी, पानी, तेजादिसे बनता है और आत्मा सच्चिदानन्द है वह कोई पंचभूत या पंचभूतका विकार नहीं है तो आप अब यह बताइये-

यद्धातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः। 2.8.7

जब स्वयं आत्मा पंचभूत द्रव्यसे बिल्कुल रहित है और देह पाँचों भूतोंसे ही बनता है तो निराकार और साकारका सम्बन्ध कैसे जुड़ा? धातुसे रहित, पंचभूतसे रहित, आत्मा, सच्चिदानन्दघन आत्मा, पंचभूतोंसे बने हुए शरीरका क्या सम्बन्ध है और इस सम्बन्धका क्या कारण है? या तो यह कहना चाहिए कि देह तो बना ही नहीं या तो यह कहना चाहिए कि देह बना भी तो देहके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि भौतिक वस्तुका अभौतिक

वस्तुके साथ, प्राकृत वस्तुका अप्राकृत वस्तुके साथ, अजड़ वस्तुका जड़वस्तुके साथ सम्बन्ध किसी भी प्रकार बनता नहीं। इसलिये आप कृपा करके बताओ; क्योंकि यदि जड़ वस्तुके साथ सम्बन्ध न बने, धातुके साथ सम्बन्ध न बने तो यह मनुष्य होना, पापी-पुण्यात्मा होना, सुखी-दुःखी होना, नारकीय-स्वर्गीय होना, देश, काल, वस्तुके सम्बन्धसे आबद्ध होना-कोई भी बात संगत नहीं होती है, इसलिये मुख्य प्रश्न यह है-

यद्धातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः। 2.8.7

अधातुमान आत्माका धातुओंसे देहारम्भ कैसे हुआ?

इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितको भागवतमें दूसरे स्कन्धके नवें अध्यायमें बताते हैं। जैसे समझो कि श्रीमद्भागवत एक कल्प वृक्ष है और वृक्षमें कन्धे होते हैं बड़े-बड़े, वैसे उस भागवत रूपी वृक्षका यह दूसरा कन्धा है और दूसरे कन्धेमें यह नवीं टहनी है, नवीं टहनी पर छोटे-छोटे पत्ते, फूल और फल लगे हुए हैं।

श्रीशुकदेवजी उत्तर देते हुए कहते हैं-

आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः।
न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा।। 2.9.1

यहाँसे उत्तर प्रारम्भ हुआ। कहते हैं कि परिच्छेद संविद् आत्मा अनुभव स्वरूप है, सबका द्रष्टा है और सबसे परे है, इस अध्यासिक आत्माका सम्बन्ध प्राकृत पदार्थसे, इस द्रष्टाका सम्बन्ध दृश्यसे, इस अधातुमानका सम्बन्ध धातुसे, मायाके अतिरिक्त और किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं है। मायाने ही यह सम्बन्ध जोड़ा है, बोले-मायासे सम्बन्ध कैसे होगा? तब दृष्टान्त दिया-'स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा।'

जैसे स्वप्न द्रष्टाके सामने जो शरीर प्रकट होते हैं, आत्मा है

अकल्पित सत्य, अनारोपित सत्य और स्वप्नमें जितने भी शरीर हैं सब-के-सब कल्पित हैं, आरोपित हैं, अध्यस्त हैं, न देशकी दृष्टिसे हैं, न कालकी दृष्टिसे हैं, न वस्तुकी दृष्टिसे हैं, न द्रष्टाकी दृष्टिसे हैं, न अधिष्ठानकी दृष्टिसे हैं, किसी भी दृष्टिसे स्वप्नके शरीर सत्य नहीं हैं तो स्वप्न देखनेवालेका स्वप्नमें दीखनेवाले शरीरोंसे सम्बन्ध कैसा? बोले- वह माया है। माया!! अपने द्रष्टा स्वयं प्रकाश अस्थान, अदेश, अकाल, अविषय स्वरूपके अज्ञानके कारण ही स्वप्न द्रष्टा स्वप्नमें दीखनेवाले शरीरोंके साथ सम्बन्ध माने हुए हैं- न घटेतार्थसम्बन्धः- विचार करने पर वह जो अर्थ सम्बन्ध है, दृश्यके साथ सम्बन्ध घटित नहीं हो सकता।

न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा।।

यहाँ दृश्य और द्रष्टाका कोई सम्बन्ध नहीं है। अध्यस्त और अधिष्ठानका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्राकृत और अप्राकृतका कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी सम्बन्ध भासता है, इसीका नाम है माया।

पहले स्कन्धमें आ चुका है-

यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते।। 1.7.5

जिस मायासे सम्मोहित होकर यह जीव-परोऽपि-माया, अविद्यासे परो होने पर भी, त्रिगुणसे बिल्कुल परे होने पर भी- 'आत्मानं त्रिगुणात्कम्'-अपनेको त्रिगुणात्मक मानता है। अपनेको त्रिगुणात्मक मानना क्या है? कि अपनेको देह मानना तमोगुणका कार्य है, अपनेको ही तमोगुणी मानना है और अपनेको पाप-पुण्यका कर्त्ता मानना, अपनेको रजोगुणी मानना है, और अपनेको शान्त मानना, समाधिस्थ मानना, धर्मात्मा मानना अपनेको सत्त्वगुणी मानना है।

असलमें आत्मा न तो मूढ़ देह है और न तो कर्मी है-कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रियकी उपाधि वाला और न तो यह सुखी शान्त, समाधिस्थ, परिच्छिन्न है। तीनों औपाधिक हैं, तीनोंसे परे है आत्मा-अदेश अकाल, अविषय और दृश्यसे विलक्षण, अध्यस्तसे विलक्षण-अनारोपितकार-यह आत्माका स्वरूप है, परन्तु इसके सामने ऐसी माया फैली हुई है कि मायाके कारण यह अपने आपको त्रिगुणात्मक मान लेता है। त्रिगुणात्मक मानना क्या है? हड्डी, मांस, चामका पुतला मानना, अपनेको मूढ़ मानना, बेहोश मानना, अज्ञानी मानना, जन्म-मरण वाला मानना, अपना बेटा, बाप, शरीरको मैं माननेके कारण है शरीरको मैं मानना मूढ़ हो जाना है-तमोगुणकी वृत्तिसे तादात्म्यापन्न होना है, कर्म और भोगको अपना मानना रजोगुणका कार्य है, ध्यान लगना, समाधि लगना, शान्त-पवित्र होना, सुखी होना-सत्त्वगुणसे तादात्म्यापन्न होना है।

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत। गी. 14.9

ये तीनों बात अपनेमें तब मानी जाती है जब अपनेको इन तीनोंसे पर परमात्माके स्वरूपमें नहीं जानते हैं, इसीलिये इन तीनोंके रूपमें अपनेको मानते हैं। अब बताया कि बहुरूपिणी मायाके साथ अपनेको मिलाकर, तादात्म्यापन्न होकर और इसके गुणोंमें रमकर ही-जीव मैं-मेरा मानने लगता है और जब शुद्धान्तःकरण होकरके तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है तब काल और मायाके चक्करसे छूट जाता है और अविद्या रहित होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है और काल-माया दोनोंसे उदासीन हो जाता है।

शुकदेवजी महाराज यह प्रसंग उपस्थित करते हैं-यह बात समझानेके लिए स्वयं नारायणने ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया।

इससे यह बात निकली कि यदि कोई चतुःश्लोकी भागवतका कोई दूसरा अर्थ निकाले तो वह प्रसंगसे संगत नहीं होगा, क्योंकि जिस प्रयोजनके लिये भगवान् नारदने ब्रह्माको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया, वह प्रयोग अब ध्यानमें आया। बोले- नारायणको ऐसी क्या परिस्थिति थी कि-सत्य वदाः भगवान् ऋतं-ऋत शब्दका प्रतिपादन भगवान्ने ब्रह्माके प्रति किया-इसका कारण क्या है?

भगवान्ने ब्रह्माको दर्शन दिया था, उनके सामने प्रगट हुए थे, बोले-ब्रह्मामें ऐसी क्या विशेष बात थी कि नारायण उनके सामने प्रगट हुए? अन्तर्यामी, साक्षी, नारायणका दर्शन हुआ उनको?

अव्यहीत प्रसादतः

ब्रह्माजीने जिस अव्यहीत-निष्कपट व्रतका आचरण किया उससे नारायण प्रकट हुए। नारायण भीतर बैठकर उपदेश करते हैं, परन्तु कब करते हैं, जब वह निष्कपट होकर व्रतका पालन करता है।

महाभारतमें बताया-

सर्वं जिह्मं मृत्यु पदं आर्जवं ब्रह्मणः पदम्
एतावान् ज्ञान विषयः प्रलापः किं करिष्यति।

(उ.प. 179.25)

जिह्म-यानि कपट, मृत्युके लिये आमन्त्रण है। जब तुम कपट करते हो तो मृत्युसे कहते हो कि हे मौत! तू आ मुझे मार!! 'आजर्वं ब्रह्मणं पदम्'-और जब सरल हो जाते हो तब ब्रह्मको आमन्त्रित करते हो कि हे ब्रह्म! आ मुझसे एक हो जा!!

एतावान् ज्ञान विषयः प्रलापः किं करिष्यति।

सम्पूर्ण वेदान्तका विचार इतना ही है और बाकी सब प्रलाप है, केवल प्रलाप करनेसे वेदान्तका ज्ञान नहीं होता, ज्ञानके लिए सरल

हृदयकी, निष्कपट, निश्च्छल हृदयकी जरूरत होती है इसीसे मनुस्मृतिमें बताया-

वेदान्तमें कहा हुआ फल जीवन मुक्ति, सद्योमुक्ति, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्मसे ऐकात्म्य किसको प्राप्त होते हैं? जिसकी वाणी शुद्ध है, मन शुद्ध है-इन्द्रियाँ जिसकी सुरक्षित हैं-उसको वेदान्त-फलकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्माने अव्यहीत व्रत, निःव्यहीत व्रत, निष्कपट व्रतका अनुष्ठान किया इसलिये भीतरके नारायण-आत्मदेव उनके ऊपर प्रसन्न हुए और उनके सामने प्रगट हो गये।

आत्मा वैवस्वतो नाम सर्वेषां हृदि तिष्ठति।

भीतर बैठा हुआ नारायण उससे यदि तुम्हारा कोई मतभेद नहीं है, कोई लड़ाई नहीं है तो न गंगा नहानेकी जरूरत है, न कुरुक्षेत्र जानेकी जरूरत है, तुम खुश रहो-तो ब्रह्माने ऐसी क्या तपस्या की? प्रसंग आया कि जब ब्रह्मा प्रकट हुए तो उनके मनमें सृष्टि की वासना उदय हुई।

अब ब्रह्माने देखा कि सृष्टि बनानेके लिए जो उपयोगी ज्ञान चाहिए वह है ही नहीं, सृष्टि बनानेके लिये ज्ञानमें बड़ी विलक्षणता चाहिए, नहीं तो जैसे मकड़ी जाला बनाकर उसीमें उलझ जाती है, रेशमका कीड़ा जैसे खुद रेशम बनाता है और खुद उसमें फँस जाता है और उसीके साथ मर जाता है, वैसे ही यह संसारी लोग स्वयं ही अपनी दुनिया बनाते हैं, संसारकी रचना करते हैं और उसीमें फँसकर मर जाते हैं-इन प्रेमी-मुहब्बती लोगोंका दुनियामें क्या होता है? खुद प्रेम जोड़ते हैं और उसीमें उलझकर मर जाते हैं-रेशमके कीड़े हैं, स्वयं रेशमके रेशे बनाये, उसमें उलझे और मर जायेंगे, और रेशम दूसरेके काम आवेगा। माने कीड़ेको संसार रचना करने

नहीं आया, वह तो उसी पत्तेमें फँसकर मर गया, जिसको काटकर वह धरती पर गिरा रहा है।

ब्रह्माने देखा कि यदि मैं सृष्टि बनाऊँगा-तो उसमें तीन बातें नहीं होनी चाहिए। क्या?

सृष्टि बनानेका संकल्प तो हो; पर उसमें वासना नहीं होनी चाहिए।

निर्माण-कर्म तो हो रहा है, परन्तु उसमें कर्तृत्वका मद नहीं होना चाहिए।

सृष्टिमें बहुत सारे जीव हैं, उनको कबतक कर्मानुसार, स्वर्गीय शरीर, नारकीय शरीर-इस कार्यमें पक्षपात नहीं होना चाहिए। वैषम्य नहीं होना चाहिए।

कर्तृत्वसे मुक्त, विषमतासे मुक्त, वासनासे मुक्त सृष्टि हो-ये तीन चीज न हो-वासना, कर्तृत्वका अभिमान और वैषम्य-विषमता न हो-तब तो ब्रह्मा मुक्त होंगे, नहीं तो उन पर भी भगवान्‌का डण्डा पड़ेगा-इसके लिए तत्त्वज्ञान चाहिए।

ब्रह्माने देखा कि अभी तो हमारे अन्दर तत्त्वज्ञान नहीं है, तत्त्वज्ञान नहीं है और हम सृष्टि बनावेंगे तो जरूर फँस जायेंगे। तैरना पहले सीख लो, तब समुद्रमें उतरो और नदी, सरोवरमें तैरना सीखा नहीं और सीधे समुद्रमें कूद पड़े, तो मरो!!

तब ब्रह्माजीने चिन्तन किया कि हमको क्या करना चाहिए-उस समय आकाश-वाणी हुई-वही अन्तर्यामी-नारायण। उन्होंने दो अक्षरका उच्चारण किया दो बार!

स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशम् (2.9.6)

कौनसे दो अक्षर? सोलहवाँ और ईक्कीसवाँ अक्षर।

पादयोः मानसां पर्कः

'क'से लेकर 'म' तकके अक्षरोंको पर्क बोलते हैं। अब उसमें

सोलहवाँ गिन लेना, थोड़ा परिश्रम भी करना चाहिए, थोड़ी बुद्धि भी जगे। क से सोलहवाँ 'त' और क से इक्कीसवाँ 'प'। 'तप' यह लोट् लकारका रूप है, जिसका अर्थ होता है-तप* करो! तप करो!! आत्मालोचन रूप तप करो, अपने आपको जानो-'मैं कौन हूँ' इसको जानो। अब ब्रह्माजीने बड़ी भारी तपस्या प्रारम्भ की। ब्रह्माजी कमलनालके ऊपर गये, नीचे गये, बाहर बहुत ढूँढा, लेकिन बाहर कहीं भी अपनी आत्मा नहीं मिली, तब अन्तमें वह अन्तर्मुख हुए-भीतर देखा उन्होंने कि नारायण बैठे हुए हैं-सम्पूर्ण वैकुण्ठ लोकका उनको दर्शन हुआ। वही ब्रह्मा जिनको नारायणका कभी दर्शन नहीं हुआ न बाहर, न भीतर। नारायण उनके सामने करुणा करके प्रकट हुए-नारायणके प्रकट होनेसे बड़ा भारी आनन्द हुआ ब्रह्माको!

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः।
ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग् यत्पारमहंस्येन पथाधिगम्यते।।

2.9.17

नारायणका दर्शन होते ही...। एक अन्तर्यामी बैठा है हमारे भीतर-नारायण उसके पार्षद हैं, उनके साथ लक्ष्मी है, दर्शन करते ही उनका हृदय आनन्दसे भर गया, शरीरमें रोमांच हुआ, आँखोंमें आँसू आये, ब्रह्माने उनको प्रणाम किया और नारायणने झट् ब्रह्माका हाथ पकड़ लिया माने हाथ मिलाया ब्रह्मासे, यह मतलब हुआ-

बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा।
प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन्।।

2.9.18

---

* 'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व' (तैत्तिरीय) यहाँ तपका अर्थ शारीरिक या मानसिक ताप सहन नहीं है, तत्त्वकी आलोचना-विवेचना है।

(भागवत दर्शन : 2 भूमिका, पृष्ठ 11)

नारायण भी आनन्दमें, ब्रह्मा भी आनन्दमें–दोनोंका हाथ मिला यानि नारायणका आशय था कि ब्रह्माजी जो काम आप करना चाहते हो उसमें हम तुम्हारे सहयोगी हैं। 'कर' कर्मका मूल है, जो इस करको चलावे उसका नाम करण है और करण जिसमें लीन हो जाय वह कारण है और उस कारणका जो साक्षी है–उसका नाम आत्मा है, परन्तु वह ब्रह्म है–अदेश, अकाल, अविषय, अद्वितीय–यह ज्ञान ऐसे नहीं होता है, कोई चाहे कि ऐसे ही यह ज्ञान प्राप्त कर लें तो नहीं, यह ज्ञान तो महावाक्यसे ही होता है। ज्ञानके लिये महावाक्यकी जरूरत पड़ती है।

तो भगवान् मुस्करा कर हाथ मिलाकर, प्रसन्न भी हैं।

श्रीभगवान् उवाच

त्वयाहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया।
चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम्।।

2.9.19

भगवान्ने कहा–तुम्हारी तपस्यासे 'मैं' प्रसन्न हूँ–तुमने बड़ी भारी तपस्या की।

–जो बड़ी भारी तपस्या करे उसी पर प्रसन्न हो जाते हो क्या?

–ना!! केवल तपस्यासे प्रसन्न नहीं होता हूँ।

–तो?

–कोई तपस्या करे और कपटी हो–कपट करे तो उसके ऊपर मैं प्रसन्न नहीं होता। अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो वर माँग लो, क्योंकि मेरा दर्शन हो जानेके बाद श्रेयकी प्राप्ति अवश्य होती है। मेरा दर्शन भी तुम्हें मेरे संकल्पसे हुआ, तुम्हें तपस्या करनेको कहना भी मेरा संकल्प था, क्योंकि तपस्या बहुत बड़ी शक्ति है।

नारायणने ब्रह्माजीको उपदेश किया–

तपो मे हृदयं साक्षादात्माहं तपसोऽनघ।

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः।।

2.9.23

तप मेरा हृदय है, मैं तपस्याका आत्मा हूँ, मैं तपस्यासे ही विश्व सृष्टि बनाता हूँ, तपस्यासे ही संहार करता हूँ, तपस्यासे ही सृष्टिका पोषण करता हूँ। मेरी शक्ति, मेरा पराक्रम तपस्या है।

भगवान् कहते हैं–आत्मज्ञानरूप तपस्यासे ही सारी शक्तियोंका विकास होता है और मनुष्य कर्म करते हुए भी वासनासे मुक्त रहता है। कर्म करता हुआ भी कर्तृत्व मदसे मुक्त रहे और पृथक्–पृथक् व्यवहार करता हुआ भी विषमताके पापसे मुक्त रहे–इसका सामर्थ्य हमारे अन्दर आत्मज्ञानसे ही होता है।

ब्रह्माजी तुमने तपस्या करके मुझको संतुष्ट कर दिया। इसपर ब्रह्माजीने निवेदन किया–हे प्रभु! आप केवल मेरे ही हृदयमें नहीं रहते, सबके हृदयमें रहते हैं और आपका ज्ञान कहीं रुकता नहीं, अप्रतिहत है, अप्रतिरुद्ध है, फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आपका जो निर्गुण और सगुण–स्वरूप है–उन दोनोंको मैं जान जाऊँ। पर स्वरूप और अपर स्वरूप। पर स्वरूप माने निर्गुण स्वरूप और अपर स्वरूप माने सगुण स्वरूप। दोनोंका मुझे ज्ञान हो जाय, आप किस प्रकार इस सारी सृष्टिको अपनेमें धारण करते हैं और–आप स्वयं आबद्ध नहीं होते–वही ज्ञान, वही बुद्धि कृपा करके हमको दे दीजिये–तो मैं भी सृष्टिका निर्माण करूँ–ऐसा ज्ञान हमको चाहिए। कैसा? कि प्रजाकी सृष्टि करते हुए भी मैं बद्ध न होऊँ। आपने मुझे अपना सखा, मित्र बनाया है, मेरा हाथ आपने पकड़ा है। अब मैं आपकी सेवामें स्थित होऊँ, और मुझे अभिमान कभी न होवे, यथा योग्य शरीर सम्पूर्ण जीवोंको प्रदान करूँ–

ऐसा ज्ञान आप हमको दें कि हमें कर्म करते रहने पर भी बन्धन न हो।

इसके उत्तरमें भगवान्‌ने चतुःश्लोकीका उपदेश दे दिया। उसमें वैसे तो सात श्लोक हैं-जिसमें-से दो श्लोक भूमिकाके हैं और एक श्लोक उपसंहारका है और मध्यमें चार श्लोक चतुःश्लोकी भागवत हैं, बादमें फलका कीर्तन है कि यह ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजीकी क्या स्थिति हो गयी?

अब भगवान् नारायण वक्ता हैं और आप श्रोता हैं; क्योंकि सबके हृदयमें ब्रह्मा भी है और नारायण भी है। हृदयमें बैठे हुए नारायण उपदेष्टा हैं और हृदयमें ही बैठे हुए चतुर्मुख ब्रह्मा श्रोता हैं। जैसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार-अन्तःकरणमें चार भेद होते हैं-वैसे ही ब्रह्माके चार मुख हैं-और हाथ भी चार ही हैं-इनके शरीरका रंग लाल है-माने जहाँ संकल्प होता है-वहाँ रंग आ जाता है, और सृष्टि-कर्म करना चाहते हैं इसलिए रक्तिमा, लालिमा है। कर्मके लिए ज्ञानकी कितनी आवश्यकता होती है-यह आप ब्रह्माको देखेंगे तो समझ जायेंगे कैसे? कि ब्रह्माकी सवारी क्या है? हंस। सात्विक-शुद्ध हंस। नीर-क्षीर विवेक करनेवाला प्राणी है-हंस। हंस रूप सात्विक-विवेक है ब्रह्माकी सवारी-हंसाधिष्ठानक ब्रह्मा-ब्रह्माका अधिष्ठान-ब्रह्माके बैठनेकी जगह क्या है? कि हंस!!

अच्छा, ब्रह्माके हाथमें क्या है? वेद! वेद क्या है? ज्ञान!! ब्रह्माकी पत्नि कौन हैं-सरस्वती! वह भी ज्ञानकी देवी हैं। तो, ज्ञानकी देवी अर्धांगिनी, ज्ञानका आधार हाथमें ज्ञान और कभी-कभी जप करनेकी भी जरूरत पड़ती है तो दूसरे हाथमें माला भी रखते हैं ब्रह्माजी। माने बिना ज्ञानके कोई कर्म किया जायेगा तो बन्धनका हेतु

होगा। आत्मज्ञान-तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न होकर किया गया कर्म देखनेमें कर्म होता है, वस्तुतः कर्म नहीं होता। क्यों? क्योंकि अदृष्टकी उत्पत्ति नहीं होती वह पुनर्जन्मका कारण नहीं बनता। इसीलिए वेदान्ती लोग कहते हैं कि तत्त्वज्ञान होने पर कर्म होता ही नहीं। कर्म होता ही नहीं इसका अर्थ है कि अदृष्टोपादक कर्म नहीं होता। माने तत्त्वज्ञानीके शरीरसे जो कर्म होता है उससे स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म नहीं मिलता, उससे पाप-पुण्यकी उत्पत्ति नहीं होती, वह सुखी-दुःखी बनानेवाला नहीं होता, कर्त्ता बनानेवाला नहीं होता-यह ज्ञानीसे होनेवाले कर्मकी महिमा है।

श्रीभगवान् नारायणने ब्रह्माजीको उपदेश किया-

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्य तदङ्गं च गृहाण गदितं मया।।
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्।।

2.9.30-31

नारायणने कहा-शास्त्रोक्त ज्ञान माने सम्पूर्ण वेदोंका तात्पर्य और विज्ञान माने अनुभव-जो कि परम गुह्य है।

परम गुह्य है माने जो बड़े-बड़े आचार्य मतभेद बनाकर उसपर आच्छादन कर देते हैं, आचार्योंके मतभेदसे यह आच्छन्न है। भगवान् स्वयं सम्पूर्ण आचार्योंके अन्तर्यामी-

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवाद भुवो भवन्ति।

6.4.31

भगवान्‌की शक्ति ही भिन्न-भिन्न आचार्योंकी मतिमें बैठ करके भिन्न-भिन्न तर्क-वितर्क, उहापोहका कारण बनती है और स्वयं भगवान् सबसे परे रहते हैं।

भगवान् स्वयं केनोपनिषत्में कहते हैं-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।।

केन. 2.11

सम्पूर्ण मतोंसे विलक्षण आत्मज्ञान परम गुह्य है-माने परम गोपनीय, सबको बताने योग्य नहीं। शास्त्रोक्त ज्ञान और अनुभव रूप विज्ञान।

सरहस्य और तदङ्ग। रहस्य माने जो उसके लिए तदाकार वृत्ति करनी पड़ती है सो, और अंग माने जो साधन करना पड़ता है सो- साधना, भक्ति, ज्ञान और विज्ञान-इन चारोंको मैं तुमको बताता हूँ, कि किस प्रकार योगाभ्यास, उपासना आदि साधन करना चाहिए और किस प्रकार अन्तमें तदाकार वृत्ति होती है, और किस प्रकार उसके द्वारा ज्ञान-विज्ञानका अनुभव होता है-यह सारी बातें मैं तुमको बता रहा हूँ-गृहाण गदितं मया-का अर्थ है ब्रह्मा! सावधान!! तुम्हारा चित्त कहीं दूसरी जगह न जाय।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्।। 2.9.31

नारायण अपने अनुग्रहसे ब्रह्माको सावधान करके कहते हैं कि बेटा! तुम श्रद्धा और एकाग्रताके द्वारा हमारे दिये हुए ज्ञानको ग्रहण करो। मैं अनुग्रह पूर्वक तुमको इस ज्ञानका दान देता हूँ।

तो, नारायणका अनुग्रह और ब्रह्माकी सावधानी-एकाग्रता और श्रद्धा-ये दोनों ही इस ज्ञानके ग्रहणमें हेतु बनेगी।

नारायणने बताया-यावानहं-मैं स्वरूपसे जितना लम्बा-चौड़ा देहातीत, कालातीत, विषयातीत हूँ-यथाभावः-मेरी सत्ता जैसी है उसको-यद्रूपगुणकर्म-मुझमें रूप, गुण, कर्म मालूम पड़ते हैं इनका

सब-का-सब तत्त्व विज्ञान तुमको प्राप्त होवे। ऐसा आशीर्वाद संकल्प करके, ऐसा संकल्प अनुग्रह करके तब नारायण उपदेश कर रहे हैं।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।। 2.9.32

अग्रे अहं एव आसम् एव-देखो इसमें 'एव' शब्दका प्रयोग दो बार है-अहमेव आसम् एव-बिल्कुल पहले ही चरणमें, अग्रे माने जब नाम, रूप, क्रियात्मक सृष्टिका प्राकट्य नहीं हुआ था, तब-और भीतर जहाँ नाम, रूप, क्रिया नहीं फुर रही थी, तब-माने जब यह आधिभौतिक सृष्टि नहीं प्रकट हुई थी तब, जहाँ इस आधिभौतिक और आधिदैविक सृष्टिकी स्फुरणा नहीं उदय होती है वहाँ-यानि सबसे पहले-अग्रे। जब हम सुषुप्तिसे जाग्रतमें आते हैं तो जाग्रतमें आनेके पहले, सुषुप्तिसे भी अन्तरंग, स्वप्नसे भी अन्तरंग, जाग्रतसे भी अन्तरंग और जब सृष्टि नहीं हुई थी तब, देशके अग्रभागमें, कालके अग्रभागमें, विषयोंमें आकार प्रगट नहीं हुए थे आकार रहित सत्तामें, क्षण-कल्पादिसे रहित विभागके कालमें अन्तरंग-बहिरंगके अन्तरालके भेदसे रहित देशमें-उन सबसे पहले वाली स्थितिमें-अग्रे। अहमेव आसम् एव-अहमेव आसम् -आसम् एव-केवल मैं ही था और था-ही-था। एव से दो बात कही गयी है।

'अहमेव आसम्'-मैं ही था और 'आसम् एव' केवल था ही था-माने कुछ विशेष नहीं था, कोई क्रिया नहीं थी, निष्क्रिय था केवल था ही था-कुछ करता हुआ नहीं था-केवल मैं ही था-'अहमेवासम्' माने दूसरा नहीं था-पहले 'एव'के द्वारा 'दूसरे'का निषेध किया गया-अहमेव आसम् ' माने मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं था। तो बोले-यदि आप ही थे तो अकेले तो चलते-फिरते होंगे कहीं आते-जाते रहे होंगे? बोले-नहीं, कुछ करता हुआ नहीं था; केवल था-ही-था।

: 2 :

'नान्यद्यतसदसत्परम्'-न तो कोई नहीं कहने लायक था, न तो कोई 'है नहीं'से परे था। यह दुनिया जो दिखायी पड़ रही है-यह जब नहीं रहेगी तब भी मैं ही रहूँगा। पहले मैं और पीछे मैं। शुरुमें सोना और बादमें सोना बीचमें गढ़ गया जेवर-तो यह जेवर क्या है? 'यदेतच्च'-यह जो जेवर दीख रहा है-यह भी सोना ही है। पहले भी परमात्मा, बादमें भी परमात्मा और बीचमें जो तुम्हारे सामने दीख रहा है वह भी परमात्मा।

'योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्'-और जब यह नहीं दिखायी पड़ेगा तो जो सबको न दिखायी पड़ने पर बचा रहता है-वही मैं हूँ, माने वही परमात्मा है।

बोले-महाराज! यह सारी दुनिया दिखायी पड़ रही है-यह क्या है? बोले-अपनी आत्मामें जो भी बिना हुए कोई चीज दिखायी पड़ रही है और जो चीज है और वह दिखायी नहीं पड़ रही है-माने यही माया है।

माया क्या है? कि जैसे आकाशमें दो चन्द्रमा नहीं होते, जरा-सी आँख दबायी तो दो चन्द्रमा दिखायी पड़ने लगे। तो यह दूसरा चन्द्रमा क्या है? वह तो आँखकी माया है न! आँखकी मायासे एक चन्द्रमा दो दीख रहा है, पर आसमानमें भी राहू रहता है वह दिखायी क्यों नहीं पड़ता-यह भी आँखकी माया है-इसी प्रकार सारी सृष्टिमें सबसे ज्यादा अप्रकटी कपटी चीज परमात्मा है। जो है सो दिखायी नहीं पड़ रहा, जो नहीं है सो दिखायी पड़ रहा। इसीका नाम माया है। रहनेवाली चीज नहीं दिखती है, यहाँ है पर दीखती नहीं है और दिखायी पड़ रहे हैं-रुण्ड, मुण्ड, शुण्ड पर-यह रुण्ड-मुण्ड-शुण्ड है नहीं; पर दिखायी पड़ रहे हैं-क्या मशान चेत गया! इसीका नाम माया है।

ईश्वर कैसा है? **यथा महान्ति भूतानि....... तेष्वहम्।।** इसको ऐसे समझो कि एक घड़ा बना। तो घड़ेकी जो सेर या डेढ़ सेरकी मिट्टीकी दीवार बनी उसमें क्या आसमान घुसा, वायु घुसी? हवा, पानी, मिट्टी, तेज उसमें घुसा? ना! ना!! पंचभूत जो पहले से मौजूद था, उसीमें घड़ेकी एक शकल खिंच गयी। एक तसवीर ही तो खिंच गयी। जैसे बालू पर लकीर खिंच जाती है, जैसे आसमानमें रंग दिखायी पड़ने लगते हैं, वैसे ही पहलेसे मौजूद पंचभूतोंमें यह रंग खिंच गये। इसी प्रकार परमात्मामें सारी तस्वीरें खिंची हुई हैं। जैसे रस्सीमें साँप बिल्कुल नहीं होता है, साँप रस्सी नहीं होता है, रस्सी भी साँप बिल्कुल नहीं होती है–यही जगत्का स्वरूप है।

परमात्माकी प्राप्तिके लिए ज्ञानके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसीसे बताया न!

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

श्वेता. 3.8

एतं पुरुषं! एतं का अर्थ है प्रत्यगात्मा। एतत्का अर्थ है प्रत्यक्ष-महात्मा। पुरुषं–यह पुरुष महान है–देश, कालका प्रकाशक है–आदित्य वर्ण अविद्यासे भी परे है–अज्ञोहं–इस वृत्तिका भी प्रकाशक है।

एतं तदेव विदित्वा–ये इसका अन्वय है–एतं आत्मानं तदेव परमात्मानं विदित्वा–इस आत्माको यह परमात्मा जानकर तत् त्वं पदार्थके एक्यको जानकरके तदेव विदित्वा–मृत्युं अप्येति। तमेव विदित्वा मृत्युं अप्येति। त्वं विदित्वा एवं मृत्युं अप्येति। त्वं विदित्वा मृत्युं अप्येत्येव। इसीको जानकर उसको जानकर ही, और मृत्युका अतिक्रमण हो ही जाता है–इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये इस जीवनमें यदि परमात्माको नहीं जाना तो–महति विनष्टि।

इसलिये अन्वय-व्यतिरेकका श्रुतिने प्रतिपादन किया, कि जो

जानेगा उसको मुक्ति मिलेगी और जो नहीं जानेगा वह जन्म-जन्मके लिये बँध जायेगा और विनाशका भाजन होगा। इसलिये जानना जरूरी है-इस बातको बतानेके लिए-यानि श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः -ये बतानेके लिए चौथा श्लोक प्रवृत्त हुआ।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।

आत्मनः तत्त्व जिज्ञासुना एतावदेव जिज्ञास्यं-आत्मनः तत्त्व जिज्ञासुना-जो आत्माके तत्त्वका जिज्ञासु है, उसके द्वारा बस इतना ही जिज्ञासा करने योग्य है, विचार करने योग्य है। 'एतावदेव' श्रीमद्भागवतमें अवधिका वाचक है।

एतावान् प्रभोर्थो यद् दीन परिपालनम्-किसीको प्रभुता मिली तो प्रभुता मिलनेका अर्थ सिर्फ इतना ही है-राजा, शासक, राष्ट्रपति बनानेकी क्या जरूरत है? मिनिस्टर बनानेकी क्या जरूरत है? किसीको प्रभुता क्यों देना? यद् दीन परिपालनम्-संसारमें जो दीन हैं साधन हीन, साधन शून्य हैं जिनके पास घर नहीं है, शरीर स्वस्थ नहीं है, जो अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकते, उनकी भी रक्षा हो जाय, उनको भी कोई सतावे नहीं यही प्रभुताका अर्थ है, प्रभुताका प्रयोजन इसीसे पूरा होता है।

एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते।

4.28.26

मनुष्यका धर्म क्या है? मनुष्यका धर्म सिर्फ इतना ही है कि वह दुःखी पर दया करे। जहाँ तक हो सके व्यक्तिके दुःखको मिटानेकी कोशिश करे-

एतावानव्ययो धर्मः 6.10.9-यह अगला धर्म है।

एतावान् कह करके सीमा बनायी-

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः।

2.3.11

एतावानेव लोकेस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः।।

6.3.22

मनुष्यके लिये कल्याणकारी धर्म बस इतना ही है कि वह भगवान्के नामका जप करके, ध्यान करके, अपने चरित्रको शुद्ध करके भगवान्में अपनी भक्ति जोड़े।

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः।
यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति।।

6.10.9

अविनाशी, सनातन धर्म है यह–और बस वह इतना ही है–

एतावानात्मसम्मोहो यद् विकल्पस्तु केवले।
आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि।।

11.28.36

केवल ब्रह्म तत्त्वमें जो भेद-दृष्टि है, इसीका नाम अज्ञान है। तो फिर मनुष्यका कर्तव्य क्या है?

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।

देखो भाई! तत्त्व जिज्ञासु तो बहुत होते हैं, एक हमारे मित्र हैं–बड़े विद्वान्, बड़े अच्छे यूनिवर्सीटीमें एक विभागके अध्यक्ष हैं, हमलोग साथ-साथ रहते थे–पहले। एकदिन वह कोई लेख लिख रहे थे–लेखका शीर्षक रखा था–'हड़ताल-तत्त्व'। मजदूर लोग काम बन्द करके हड़ताल करते हैं न! तो हड़ताल-तत्त्व, भोजनतत्त्व, भरत-तत्त्व, और पड़ोसीके घरमें क्या रसोई बन रही है, और क्या लड़ाई हो रही है–इसका भी एक तत्त्व होता है–वह भी लोग जान लेते हैं–इसके भी तत्त्व जिज्ञासु होते हैं–भला! पता लगा लेते हैं कि आज

पड़ोसीके घरमें क्या पका है? आज पति-पत्नीमें लड़ाई क्यों हुई? इसका भी लोग तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेते हैं-जो लोग इतनी निचली तह पर उतरे हुए हैं, उनलोगोंके लिए यह बात नहीं कही जाती है, जो दोष-तत्त्वको जाननेमें निपुण हैं-उन लोगोंके लिये यह चर्चा नहीं है, विषयके तत्त्व-जिज्ञासु, भोगके तत्त्व-जिज्ञासु, तर्कके तत्त्व-जिज्ञासु- इन लोगोंके लिये यह चर्चा नहीं है।

देखो! पहले अधिकारी समझ लो-आत्मनः तत्त्व जिज्ञासुना- श्लोकमें-से यह बात निकलती है-आत्मनः तत्त्व जिज्ञासुनैक-एताव देव जिज्ञास्यं एव-आत्मनः एव तत्त्व जिज्ञासुना-जो केवल आत्माका ही तत्त्व जानना चाहता है। रहने दो दुनिया; हम तो केवल अपने आपको जानेंगे।

एक महात्माजीसे किसीने पूछा-महाराज! हम तो ईश्वरको जानना चाहते हैं?

ईश्वरको!

अच्छा! तुम तो बड़े भाग्यशाली हो जो ईश्वरको जानना चाहते हो पर, यह तो बताओ कि क्या तुमने अपने आपको जाना?

ना! महाराज!! अपने आपको तो नहीं जाना।

तो, साढ़े तीन हाथके शरीरमें रहनेवाले अपने आत्मदेवको तो तुमने जाना नहीं और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें अधिष्ठान और प्रकाशके रूपमें रहनेवाला जो तत्त्व है उसको तुम कैसे जानोगे? तो, पहले अपनेको जानो!! आत्मानं विजिज्ञासस्व-अपने आपकी जिज्ञासा करो!

जितना है उतनेमें संतोष नहीं है; कोई देखनेमें अच्छा लगे तो वह देखनेमें अच्छा क्यों है, उसकी अच्छाईका पता लगाओ, 'मनमें उसके कोई-न-कोई दुष्टता होगी तभी तो अच्छाई दिखा रहा है'-ऐसा मत सोचो, पर लोगोंका ऐसा ख्याल होता है कि जब वह दुनियामें अपनी इतनी अच्छाई जाहिर कर रहा है, तो उसके मनमें कोई-न-

कोई दुष्टता होगी–तो आओ इसके तत्त्व--ज्ञानको प्राप्त करें कि इसमें क्या दुष्टता है! ऐसे लोगोंको इस मार्गमें चलनेका अधिकार नहीं है।

शान्तो दान्त उपरतस्तितीक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति।

बृह. 4.4.23

अपने हृदयमें अपने आपका दर्शन करो।

तो, पहली बात यह है कि आत्म तत्त्वका जिज्ञासु होवे।–ऐसा पुरुष इस ज्ञानका अधिकारी है।

आत्मा शब्दका क्या अर्थ है? आत्मा शब्दका अर्थ दोनों तरफसे ले लो। भक्त लोग आत्मा शब्दका अर्थ परमात्मा करते हैं। वेदान्ती लोग आत्मा शब्दका अर्थ प्रत्यक् चैतन्य–जीभके पीछे मन, मनके पीछे बुद्धि, बुद्धिके पीछे जीव, उस जीवमें जो द्रष्टा बैठा हुआ है–उस द्रष्टा स्वयंप्रकाशको आत्मा बोलते हैं। सबके पीछे बैठकर जो सबको देख रहा है, जो इस नाटकशालाका दीपक है, लोगोंके भावाभावको जाहिर करनेवाला–जैसे मंच पर कोई नाटक कर रहा है तब भी दीपक प्रकाशता है और नाटक करनेवाला हट गया, नैपथ्यमें चला गया, तो भी दीपक प्रकाशता है–ऐसे ही सृष्टिके पर्दे पर क्या लीला हो रही है–इसकी परवाह किये बिना भीतर बैठकर जो प्रकाशित कर रहा है। आँखके अच्छे और बुरे दोनों रूपको, कानके अच्छे और बुरे दोनों शब्दको, त्वचाके अच्छे-बुरे दोनों स्पर्शको, नासिकाकी अच्छी–बुरी दोनों गंधको, जीभके अच्छे-बुरे दोनों स्वादको, मनके अच्छे–बुरे दोनों संकल्पको, बुद्धिसे होनेवाले अच्छे-बुरे दोनों प्रकारके विचारोंको--उनसे अलग रहकर उनको प्रकाशित करता है–वह अपना आपा, उस अपने आपे–आत्मतत्त्वको जाननेकी जिज्ञासा है तुम्हारे मनमें? क्या तुम अपने आपको पहचानना चाहते हो? 'कोहं'–'मैं' कौन हूँ– ऐसी जिज्ञासा क्या तुम्हारे चित्तमें कभी उदय हुई? अगर हुई तो तुम्हारे लिये मार्ग बहुत छोटा रह गया, छोटा ही

नहीं रह गया खत्म हो गया। क्यों? क्योंकि यदि दूसरेको जानना हो, मिलना हो तो उसके घर जाना पड़े और उसके बारेमें जानकारी प्राप्त करना पड़े और अभी न मिले तो इन्तजार करना पड़े कि आगे कब मिलेगा? दूसरेके घर जाना क्यों? दूसरेको जाननेके लिए प्रयत्न करना क्यों? तुम तो अभी, यहीं अपने आपमें उसको प्राप्त करो। तुम्हें मार्ग नहीं तय करना है–मार्गका प्रारम्भ जहाँसे होता है, वहीं तुम बैठे हुए हो और मार्गके अन्तमें मिलना क्या? यही मिलना है–तो फिर मार्गका झगड़ा काहेको पालते हो–अपने आपको पहले ही जान लो न!

दूसरेको जाननेके लिये मार्ग, प्रमाण होता है, दूरबीन–खुर्दबीन भी दूसरेके लिये है; अपने लिये नहीं है। तो, एतावदेवमें मार्गकी लम्बाई समाप्त हो गयी। अब तुम्हें कोई कष्ट साध्य या प्रयत्न नहीं करना है, परिश्रम समाप्त हो गये। एतावदेव–'इतना ही तो है'। इतना ही है–माने बिल्कुल–चुटकी बजाते।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा

आप सब तो प्रेमकुटीर के पुराने श्रोता! आपने तो सुना ही होगा–घोड़ेकी रकाबमें पाँव और तत्वज्ञान! घोड़ेकी रकाबमें बायाँ पाँव डाला ही था कि जिज्ञासा हुई और अष्टावक्र गुरुने उपदेश किया और जान लिया कि 'मैं ब्रह्म हूँ' फिर घोड़े पर बैठकर दूसरा पाँव भी रकाबमें!

योगवाशिष्ठमें लिखा है कि आँखकी पलक गिरानेमें देर होती है, परिश्रम पड़ता है–

हे रामजी! फूलको मसलनेमें परिश्रम है, आँखकी पलक गिरानेमें भी परिश्रम है लेकिन अपने आपको जाननेमें कोई परिश्रम नहीं है।

तो, एतावदेव–जिसमें इन्तजार करना ही नहीं और कहीं जाना नहीं, और किसी दूसरेके बारेमें जानकारी प्राप्त करनी नहीं, इसी समय,

इसी स्थानमें, अपने आपको ही जानना है। किससे पूछने जाओगे कि मेरा नाम क्या है? मैं कैसा हूँ। काला कि गोरा? शर्म आनी चाहिये।

'एतावदेव जिज्ञास्यं'– अब जरा जिज्ञासावाली बात सुनाता हूँ आपको। कह देते हैं–जिज्ञास्य–यानि जाननेके योग्य है। जिज्ञासा माने होता है–जाननेकी इच्छा। ज्ञानकी इच्छाका विषय बनाने योग्य है–इसका यह अर्थ हुआ।

तुम क्या जाननेकी इच्छा करते हो? पत्नीको जाननेकी इच्छा करते हो? पड़ोसीको जाननेकी इच्छा करते हो? नहीं! नहीं!! अपने आपको जाननेकी इच्छा करो! जो लोग ब्रह्मसूत्र पढ़ते हैं–उनको पहले यह बात पढ़ायी जाती है–यह ककहरा है–वेदान्तका ककहरा यानि क ख ग घ। क्या पढ़ाया जाता है? कि 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' में जो जिज्ञासा पद् यानि जाननेकी इच्छा है, बोले–'जिज्ञासा कर्तव्या'–जिज्ञासा करनी चाहिए। इच्छा कर्तव्य नहीं होती, इच्छा तो कृत होती है; कर्तव्य नहीं होती–इसका अभिप्राय आपके ध्यानमें आ जाय ईश्वर कृपासे!

इच्छा जब हो लेती है तब पता चलता है कि मेरे मनमें इच्छा हुई। इच्छा तो अपने आप जैसा संस्कार होता है, उसके अनुसार, रूप ग्रहण करके आती ही है। इच्छा आरम्भ नहीं है। माने हम यह इच्छा प्रारम्भ करते हैं–ऐसे नहीं बोला जा सकता–'इच्छा आरम्भ्या न भवति'–इच्छा आरम्भ नहीं होती है।

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'में ब्रह्म जाननेकी इच्छा करनी चाहिये इसका क्या अर्थ हुआ? इच्छा होती है या कि इच्छा कर रहे हैं? तब वहाँ इच्छा शब्दका वाच्यार्थ ग्रहण न करके लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है–वहाँ जिज्ञासा पदका अर्थ होता है विचार! अथातो ब्रह्म जिज्ञासा–ब्रह्म जिज्ञासा–ब्रह्म विचार; कर्तव्यः–बुद्धिके द्वारा ब्रह्म तत्त्वका विचार करना चाहिए।

देखो, बुद्धिसे विचार करनेमें हम स्वतन्त्र हैं कि किस विषयमें विचार करें और शरीरसे कर्म करनेमें स्वतन्त्र हैं कि हाथमें क्या उठावें क्या न उठावें? धर्माधर्मके सम्बन्धमें विधान होता है कि 'यह करना' और 'यह नहीं करना' और विचार करनेमें स्वतन्त्र हैं तो विचार किसका करना किसका नहीं करना, बुद्धि कहाँ लगाना कहाँ नहीं लगाना? लेकिन इच्छा तो अपने आप हो जाती है; जिसका कर्म सिद्ध होता है बाहर जिसकी बुद्धि सिद्ध होती है भीतर-इन दोनों पाटोंके बीचमें पड़कर इच्छा अपने आप ही सिद्ध हो जाती है। अगर आप वासना सिद्ध करना चाहते हैं, इच्छा सिद्ध करना चाहते हैं तो अपना विचार और अपना आचरण-इन दोनोंको सिद्ध कीजिये तो आगे बढ़ेंगे।

तो, अथातो ब्रह्म जिज्ञासामें जिज्ञासा पदका अर्थ विचार है। 'एतावदेव जिज्ञास्यं'का अर्थ है कि बस हमें इतना ही विचार करना चाहिये-एव शब्द दोनों तरफ है-जिज्ञास्यं एव-जरूर विचार करना बाबू। अगर यही विचार किये कि क्या खाँय क्या पीयें, क्या कमाँय, कैसे सोवें? कैसे भोगें-तब तो इस संसारमें फँसे रह जाओगे। इसलिये सम्पूर्ण संसारके अधिष्ठानके रूपमें 'अहमेवासमेवाग्रे' में जो 'अहं' है वह क्या चीज है। जो विद्यमान होकर भी नहीं भासित हो रहा है मायाके कारण, वह क्या चीज है? जो सम्पूर्ण पदार्थोंके परिवर्तनशील होनेपर भी नहीं परिवर्तित हो रहा है वह क्या चीज है-इसका विचार करना अपने जीवनमें जरूर-केवल सुनकर नहीं रह जाना। कभी उड़ती-फिरती इच्छा आ गयी तो केवल उसीके चक्करमें नहीं रहना।

जिज्ञास्यं का अर्थ है विचार्यं। जिज्ञास्यं पदका पर्याय है विचार्यं। 'विचार्यं एव'-अवश्य विचार करना चाहिए अपने जीवनमें तत्त्वजिज्ञासुको। तत्त्व जिज्ञासु दूसरी चीज है और आरोपित जिज्ञासु दूसरी चीज है। तत्त्वका अर्थ तो आप जानते ही हैं-'अनारोपिताकारं वस्तु

तत्त्वं। जिसमें आकारका आरोप न किया गया हो–ऐसी वस्तुको तत्त्व कहते हैं। माने स्त्री और पुरुष दो हैं–एकमें स्त्री आकार आरोपित है, एकमें पुरुष आकार आरोपित है–एक ऐसी धातु है जो स्त्री–पुरुषमें एक-सी है, तो विचार किसका करना? स्त्रीका विचार नहीं करना कि इसकी आँख कैसी और इसका कान कैसा? पुरुषका विचार नहीं करना कि इसकी नाक कैसी और इसकी मूँछ कैसी। दोनोंमें जो एक धातु है–उसका विचार करना। तत्त्वका विचार माने आकारकी कल्पनासे निर्मुक्त सत् तत्त्वका विचार करना। क्योंकि आकार कालमें भूतकाल–वर्तमान देशमें–अन्तर्देश, बहिर्देश बदलते हैं। आटेकी स्त्री बना दो, आटेका पुरुष बना दो–आटा तो आटा ही रहेगा न। मोमसे हाथी बनाओ, चाहे गधा बनाओ–तो ये मर्द–औरत, हाथी–गधा क्या है? एक आरोपित आकार हैं–उसमें जो मूल सत्ता है वह एक है–उसका नाम तत्त्व है।

तो, तुम आकारको मत पकड़ो–जाग्रत अवस्था एक आकार है, स्वप्नावस्था, सुषुप्तावस्था, समाधि–एक आकार है। ब्रह्मलोक, वैकुण्ठादि एक–एक आकार है–आकार विषयक नहीं तत्त्व विषयक जिज्ञासा करो।

जैसे बाजारमें कोई साड़ी खरीदने जाय तो उसका सूत कैसा है या बुनायी कैसी है न देखे; बल्कि यह देखे कि डिजायन कैसी, रंग कैसा, बेल–बूटा कैसा है? उसको औरत बोलेंगे–जो आवत–रता इति औरता–जो बादमें पैदा होनेवाले आकारमें रत है–जो छोटी चीजमें फँस गयी उसका नाम औरत। यदि शरीर पुरुषका हो और वह भी छोटी चीजमें फँस जाय तो वह भी औरत। मर्दनात्–मर्द जो शत्रुओंका मर्दन कर दे वह मर्द–अज्ञान अहंकारादि शत्रुओंके मर्दन हेतु सन्नद्ध होवे–वह स्त्रीके आकारमें रहते हुए भी मर्द। जो अज्ञानको मिटानेके लिये तैयार है–वह मर्द! जो सृष्टिके आकार–विकारमें फँस गया सो औरत!

'एतावदेव जिज्ञास्यं एव'-केवल तत्त्व जिज्ञासु इसका अधिकारी है और जाननेका विषय बस इतना ही है, इसको जाननेकी चेष्टा इसी जीवनमें करनी चाहिये। जिज्ञासा माने विचारका विषय। विचार करनेसे क्या होता है?

देखो, ब्रह्मसूत्रका पहला सूत्र है-अथातो ब्रह्म जिज्ञासा और आखिरी सूत्र है-अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः-अनावृत्ति फल है और साधन?-जिज्ञासा है। अथातो ब्रह्म प्रेप्सा-यह सूत्र क्यों नहीं है-कि 'हम ब्रह्मको पाना चाहते हैं।' माने ब्रह्मको पाना नहीं है, ब्रह्म पाया हुआ है-उसको जानना है-इसका अर्थ यह है कि जिस दोषके कारण ब्रह्म छिपा हुआ है, उस दोषके निवारणमें समर्थ साधनका निरूपण करते हैं। यह ज्ञान-जिज्ञासा किस दोषके निवारणमें समर्थ है? अज्ञान रूप दोषके निवारणमें समर्थ है। अज्ञानके कारण ब्रह्म ढँका हुआ है और ज्ञानसे ही उसका आवरण भंग होता है-इसलिये ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये-अध्यास भाष्य सारा-का-सारा जिज्ञासा पदसे निकल आया। अध्यासके कारण ही द्वैत भासता है। अध्यास कहाँसे आया? अज्ञानकी निवृत्तिके लिये क्या करना चाहिए? अथातो ब्रह्म जिज्ञासा-ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये; क्योंकि ज्ञान अज्ञानका निवर्हण करता है, इसलिये हमारे संसार-दोष, बन्धन, अनर्थका सकल-मूल अज्ञान है, अज्ञानके निवर्हणसे ही जीवको सम्पूर्ण अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है, इसलिये ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अनावृत्ति शब्दात्-अन्तमें अनावृत्ति होती है। अनावृत्तिका एक अर्थ होता है-जन्म-मृत्युकी आवृत्ति, बार-बार पैदा होओ और मरो, यह चक्कर नहीं चलेगा। अनावृत्तिका दूसरा अर्थ यह कि वृत्तिकी आवृत्ति नहीं करनी पड़ेगी-सोहं सोहं, अहं ब्रह्म अहं ब्रह्म-यह सब कट जायेगा-एकबार ज्ञान होनेके बाद दूसरा नहीं बोलना पड़ेगा-अनावृत्तिः शब्दात्-कोई

आवृत्ति नहीं करनी पड़ेगी। वहाँ साधनकी भी समाप्ति और साध्यकी भी समाप्ति हो गयी। कैसे हुआ भाई? बोले–शब्दात्। तत्त्वमस्यादि महावाक्य रूप शब्दसे ही हुआ। ज्ञान है नित्य साधन और अविद्या अनावृत्ति रूप मोक्ष है फल और बिना इस तत्त्वज्ञानके अनर्थकी निवृत्ति परमानन्दकी प्राप्ति हो नहीं सकती, मोक्ष हो नहीं सकता, इसलिये इसी जीवनमें ब्रह्म-विचार करना चाहिये। कैसे करें?

तो, एतावदेव जिज्ञास्यं–किं जिज्ञास्यं! अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा–प्रत्येक भाषाके अपने–अपने शब्द होते हैं। एक वैद्य–डॉक्टर जब आयुर्वेद शास्त्रके अनुसार अपनी भाषा लिखता है उसे लेजाकर किसी वकीलसे पढ़वाओ–उसमें दवाओं और शरीर-संस्थानोंके नाम, चिकित्साके तत्त्वोंको, वकील नहीं समझता। डाक्टरीकी भाषा डाक्टर समझता है और किसी कानूनी विषयको वकीलसे लिखवाओ और लेजाकर डाक्टरसे पढ़वाओ तो? डाक्टरकी समझमें नहीं आवेगा। कलाके प्रोफेसर साइंसको नहीं समझते हैं, साइंसके प्रोफेसर कलाको नहीं समझते हैं–अलग–अलग बोली होती है। अन्वय–व्यतिरेक वेदान्तियोंकी बोली है। नैय्यायिकोंकी भाषामें इसका दूसरा अर्थ होता है और वेदान्तियोंकी भाषामें इसका दूसरा अर्थ होता है। भागवतमें अन्वय–व्यतिरेककी प्रक्रिया बारम्बार आयी है–पहले ही श्लोकमें है–

अन्वयादितरतश्च। 1.1.1

भागवतका प्रारम्भ ही अन्वय और व्यतिरेकसे हुआ। कहते हैं–यद्वस्तु सर्वत्र देशे सर्वदा काले च अन्वयव्यतिरेकाभ्यांस्यात्– अपने आपका पता लगाना है तो उस वस्तुका पता लगाओ–इसका अर्थ हुआ आत्मा ब्रह्म ही है। आत्माके तत्त्वको जानना चाहते हो तो उस तत्त्वका पता लगाओ–जो विषयके अलगावसे अलग–अलग नहीं होता।

यद् तत्त्वं अन्वयव्यतिरेकाभ्यां सर्वत्र देशे, सर्वदा काले च स्यात् तत् जिज्ञास्यम्।

विषय क्या है? गन्ध और गन्धवाला पृथिवी विषय है, रस और रसवाला जल विषय है, रूप और रूपवाला तेज विषय है, स्पर्श और स्पर्शवाला वायु विषय है–इस प्रकार विषय अलग–अलग होते हैं। अब हम एक ऐसी वस्तु की चर्चा करते हैं आपको जाननेके लिये जो पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाशमें हो, धरती पर भी हो और वैकुण्ठमें भी हो, अन्तर्देशमें भी और बहिर्देशमें भी हो, सर्वदा–सृष्टिके पहले भी हो और सृष्टिके बादमें भी हो। आत्मनस्तत्त्वं–आत्माका तत्त्व क्या हुआ? अहमेवासमेवाग्रे–आत्माका तत्त्व वही हुआ– यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा–देशके परिच्छेदसे रहित सर्वत्र, कालके परिच्छेदसे रहित सर्वदा, आकार–विषयताके परिच्छेदसे रहित यत्। कैसे पहचानें कि वह कहाँ है, कहाँ नहीं?

तो, अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्–अन्वय और व्यतिरेकके द्वारा इसको पहचानो। अन्वय–व्यतिरेक शब्दका सीधा–सीधा मतलब समझो। पञ्चदशीके प्रारम्भमें अनुवृत्ति और व्यावृत्ति शब्दके द्वारा समझाया गया है।

जैसे जागते समय सुषुप्ति नहीं है–जागना सोना नहीं, और सोना जागना नहीं है। सोनेमें जागना नहीं और जागनेमें सोना नहीं। यह परस्पर व्यावृत्त है, माने व्यतिरिक्त है। जाग्रत सुषुप्तिसे व्यतिरिक्त है और स्वप्न व जाग्रतसे सुषुप्ति व्यतिरिक्त है, व्यतिरिक्त है माने जुदा है। विशेष रूपसे अतिरिक्त है, माने जुदा है, अलग है।

अब देखो, आत्मा जाग्रतमें भी है, सुषुप्तिमें भी है–बिना अपने हुए किसने जाग्रत देखा? किसने सुषुप्ति देखी? अपना आपा तो था ही–यह अन्वय हुआ। जाग्रतमें स्वप्नका न होना, जाग्रत–स्वप्नमें सुषुप्तिका न होना, जाग्रतमें स्वप्न–सुषुप्तिका न होना, स्वप्नमें

जाग्रत-सुषुप्तिका न होना, सुषुप्तिमें जाग्रत-स्वप्नका न होना-यह सब परस्पर व्यतिरिक्त हैं और आत्माका सबमें होना-यह आत्माका अन्वय है। सच्ची वस्तुका पता लगानेके लिये इस दृष्टिका प्रयोग करो।

क्या कोई भी देश, कोई भी काल, कोई भी वस्तु-'मैं'के हुए बिना मालूम पड़ सकती है? ईश्वर आवे, प्रकट हो जाय और आपको दर्शन देवे, परन्तु आपको ही तो दर्शन देगा कि आप नहीं होंगे तब भी दर्शन देकर चला जायेगा? आपके बिना न दुनिया दीखती है, न लोग दीखते हैं, न ईश्वर दीखता है-अपने भानसे ही सबका भान है।

अब सबका ख्याल छोड़ दो-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, समाधिका। मिट्टी, आग, हवा, पानी, आकाश-प्रकृतिका, सृष्टिका, ब्रह्मका, ईश्वरका-सबका ख्याल छोड़ देनेपर भी अपना आपा रहेगा कि नहीं? अच्छा! रात-दिन न रहें तो अपना आपा रहेगा कि नहीं? पूरब-पश्चिम न रहे तो अपना-आपा रहेगा कि नहीं? यह-वह नहीं रहे तो अपना आपा रहेगा कि नहीं? न रहनेका भान भी तो अपने आपमें ही होगा न! कि यह नहीं है, यह नहीं है।

इसका अर्थ यह हुआ कि यह आत्मा नामकी वस्तु सबके रहने पर भी रहती है और सबके न रहने पर भी रहती है-सबके भावमें भी, सबके अभावमें भी। यहाँ भी और वहाँ भी। यह जाननेके लिए भी और वह जाननेके लिये भी। ईश्वर, जीव, जगत जाननेके लिये, सबको जाहिर करनेवाली चीज सर्वावभासक, स्वयंप्रकाश-आत्मवस्तु ही है।

यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा-जिसके बिना देश, काल, विषयका भान नहीं हो सकता, जो सबके भावाभावके भानका स्वयंप्रकाश, सर्वाधिष्ठान मूलतत्त्व है-उसे आत्मा बोलते हैं।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।। 2.9.36

अब कल आगे!

: 3 :

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।।

आपको चौथा श्लोक सुनाया। जो अपने आत्माका तत्त्व जानना चाहता है, उसके द्वारा इतना ही जानने योग्य है, स्वीकार करने योग्य है–एतावदेव जिज्ञास्यं–विचार्यं–'स्यम्' प्रत्ययका अर्थ है अविवक्षित माने संस्कृतमें इसका अर्थ होता है–ज्ञेयं–इतना ही जानना। इतना ही जानने योग्य है। और जिज्ञासाका विचारमें लक्षणा करके–तत्त्वजिज्ञासुको इतना विचार करना चाहिए–अथातो ब्रह्म जिज्ञासामें जिज्ञासा शब्दका अर्थ विचार है, इच्छा नहीं है; क्योंकि इच्छा मनुष्यके अधीन नहीं होती है। इच्छा तो आ जाती है, तब उसका पता चलता है। इसलिये मनुष्य क्या इच्छा करे, क्या इच्छा न करे इसका नियन्त्रण नहीं किया जा सकता है, परन्तु अपनी बुद्धिको खास दिशाकी ओर लगाना है, इसका नियन्त्रण किया जा सकता है। जिज्ञास्यंका अर्थ विचार्यं होता है। 'स्यम्' प्रत्ययका अर्थ अविवक्षित मानकरके ज्ञेयं–ये ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। क्या? तो बताया–

एतावदेव जिज्ञास्यं–केवल इतना ही जानना चाहिए और जिज्ञास्यं एव–जानना चाहिए ही। नहीं जानोगे तो बड़ी भारी हानि है; क्योंकि अपनेको जाने बिना ईश्वरको जानना भी सूखा है, रूक्ष है। कल्पना ही तो करेंगे न ईश्वरके बारेमें। साढ़े तीन हाथके शरीरमें रहनेवाली अपनी नन्हीं–मुन्नी आत्माको तो पहचाना नहीं और अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त ईश्वरको पहचान लिया–यह अभिमान तो झूठा है। अपनेको नहीं पहचानोगे तो दूसरे जीवको क्या पहचानोगे? जो अपने आपको नहीं पहचानता वह दूसरे जीव, दूसरे जगतको भी नहीं पहचान सकता। कौन जाने? जो अपनेको जानना चाहे।

लोग तो जानना चाहते हैं कि किस अन्नमें कैसा मसाला मिलावेंगे तो कैसा स्वाद बनेगा। माने लोग भोगको जानना चाहते हैं कि भोगसे सुख कैसे मिले? लोग अर्थको जानना चाहते हैं कि पैसा कैसे मिले? काम करनेकी चतुराई, निपुणताको जानना चाहते हैं कि वह काम कैसे हो? 'मैं कौन हूँ' यह जिज्ञासा तो

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना।
महद्भयपरित्राणाद्विप्राणामुपजायते ।।

कई हजारोंमें एकको अपनेको जाननेकी इच्छा होती है। अच्छा भई! जाने क्या?

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।

यत् सर्वत्र स्यात् यत् सर्वदा स्यात् तत् जिज्ञास्यं-जो वस्तु सर्वत्र माने सबमें हो और सर्वदा माने सर्वकालमें हो-उसको पहचानो यद् सद् -सत्‌के लिए संकेत है, सर्वनाम है-यद् सद् - जो सद् वस्तु सर्वदेशमें और सर्वकालमें रहती है-माने देश-भेदका जिसपर असर नहीं पड़ता है-अन्तर्देशमें भी है, और बहिर्देशमें भी है, स्वदेशमें भी है, परदेशमें भी है। अपना गाँव-पराया गाँव, अपना प्रान्त-पराया प्रान्त, अपना राष्ट्र-पराया राष्ट्र, अपनी पृथिवी और परायी पृथिवी, अपना ब्रह्माण्ड-पराया ब्रह्माण्ड, अपने पृथिवी, मंगल, शुक्र ग्रह और पराये पृथिवी, मंगल, शुक्र आदि ग्रह-अभी समस्याएं नहीं पैदा हुई हैं, पर जब लोग एक-दूसरे ग्रह पर आने-जाने लगेंगे, तब विज्ञानकी बहुत उन्नति हो जायेगी तो जैसे अभी राष्ट्रोंमें युद्धकी समस्या पैदा होती है, वैसे ग्रह-ग्रह, ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्डके युद्धकी समस्या बहुत वैज्ञानिक उन्नति होने पर प्राप्त होगी। बोलेंगे हमारे नेताने तो केवल हमारे राष्ट्रकी बात कही थी, मनुष्य जातिकी बात कही थी-यह तो दूसरा राष्ट्र आ गया, दूसरी

जाति आ गयी, दूसरा ब्रह्माण्ड आ गया—ना! ना!! हम उसकी चर्चा करते हैं जो इसमें और उसमें दोनोंमें है। यह तो इतना ऊँचा भाव, इतना ऊँचा दर्शन है जितना और कोई नहीं है। कोई भी दार्शनिक दस-पाँच वर्ष विचार करके कोई बात नहीं कहता है—वह तो शाश्वत सत्य, अनन्त सत्यको दृष्टिमें रखकर बोलता है। कभी भविष्यमें ब्रह्माण्ड-ब्रह्माण्ड लड़ेंगे तो संधि कैसे कराओगे? तो कहेंगे—जो ईश्वर तुम्हारे ब्रह्माण्डमें है वही ईश्वर हमारे ब्रह्माण्डमें है, धर्म, संस्कृति, उम्र, शक्ल-सूरत पहनावा अलग-अलग होने पर भी हमारे-तुम्हारे ब्रह्माण्डका ईश्वर तो वही है न, तो ईश्वर पर नजर रखकर आओ हमलोग अपने-अपने ब्रह्माण्डमें सुखसे जीयें! कल्पित पुरुष होते हैं—जिला पुरुष, प्रान्त पुरुष, राष्ट्र पुरुष, पृथिवी पुरुष—इनमें-से सबसे बढ़िया कौन-सा है? कि ईश्वर-पुरुष, ब्रह्म पुरुष, अकल्पित पुरुष इसीको अकल्पित सत्य बोलते हैं। इसीको 'यद्' बोलते हैं। वेदान्त-दर्शनकी दृष्टि चींटी और मनुष्य, बानर और मनुष्य दोनोंका औचित्य चाहती है। यह नहीं कि बानरको भेज दो विलायत और मनुष्यको यहाँ रहने दो। नहीं, गाय भी रहे, बानर भी रहे, चींटी भी रहे, मनुष्य भी रहे, देवता भी रहें; क्योंकि सर्वनाम-रूपमें एक परमात्मा यहाँ भी और वहाँ भी, आज भी और कल भी—हम लोग सोचते हैं—पाँच वर्ष में, दस-बीस वर्षमें क्या होगा? इतने वर्षोंसे जो बात चली आयी वह टूट रही है? बापके जमानेकी बात बेटा तोड़ रहा है, बेटेके जमानेकी बात दोहिता तोड़ रहा है? अरे! वह अखण्ड संस्कृति है—जिसपर कालका असर नहीं पड़ता—सर्वदा! कालमें आकार बने और बिगड़ गये, देश-भेदसे आकार बने और बिगड़ गये, हृदय-भेदसे भाव बने और बिगड़ गये, परन्तु वह अद्वय-अखण्ड वस्तु ज्यों की त्यों बनी रही।

तो, बोले इसको पहचाननेको कहते हो? इसका विचार करनेको कहते हो तो कैसे इसका विचार करें? कैसे इसको पहचानें? यान्त्रिक सत्यके रूपमें जानें कि तान्त्रिक सत्यके रूपमें जानें? एक मशीनी सत्य होता है–यान्त्रिक सत्य और एक टेकनिकल सत्य होता है–तान्त्रिक। खुर्दबीन–दूरबीन–आँखसे दिखायी पड़नेवाले सत्य यान्त्रिक सत्य। तान्त्रिक सत्यमें इसको उसमें मिलाओ, उसको इसमें मिलाओगे तो नया रसायन पैदा हो जायेगा, इस तारको यहाँसे वहाँ जोड़ो तो ऐसी रोशनी पैदा हो जायेगी, वैसी हवा पैदा हो जायेगी। अभ्याससे, मिश्रणसे, दो चीजोंको जोड़–तोड़कर तान्त्रिक सत्य बनता है। तान्त्रिक सत्य अभ्यास प्रधान होता है, यान्त्रिक सत्य अनुभव प्रधान होता है। और यह दार्शनिक सत्य है–यह प्रयोजनानुसारी सत्य नहीं है, तदार्थानुसारी सत्य है। प्रयोजनानुसारी सत्य माने जिससे अपना मतलब सिद्ध होता होवे। ऐसा करनेसे क्या होगा? ऐसा माननेसे क्या होगा? इस देवताको मानो तो यह फायदा होगा। स्वर्गलोक मान लो तो इस लोगमें संग्रहकी इच्छा कम होगी, दानकी, देनेकी इच्छा जाग्रत होगी। यह मान्यतावाले सत्य नहीं। मतानुयायीको बोलते हैं कि जितने भी दर्शन बने हैं सब किसी न किसी प्रयोजनके अनुसार बने हैं। जैसे धनिकोंके पास खूब धन हुआ तो उन्होंने पण्डितोंको खूब धन दिया और कहा कि तुम लोग एक ऐसा दर्शन बनाओ कि जिससे लोगोंके मनमें धर्मका जहर भर जाय और वह मानने लगें कि हमारी गरीबी बहुत अच्छी है–हमारे पूर्वजन्मके फलके रूपमें गरीबी मिली है–तो हम गरीब अच्छे हैं। जब वह अपनी गरीबीमें संतुष्ट रहने लगेंगे तो हमारा धन नहीं छीनेंगे। पण्डितोंको धन दे–देकर धनिकोंने ऐसे दर्शन लिखवाये हैं। जिससे गरीब हमेशा दबा रहे–यह प्रयोजनानुसारी सत्य हुआ।

हमारे दर्शन ऐसा मानते हैं कि पहले चित्त राग-द्वेषसे रहित होवे, चित्तमें वैराग्य होवे, अन्तःकरण शुद्ध होवे-तब धन लेकर दर्शन कैसे लिख पावेगा? धनियोंके प्रति द्वेष होवे तो गरीब-दर्शन बनेगा और धनिकोंके प्रति राग हो तो 'धनी-दर्शन' बनेगा यदि अपने प्रति राग होवे तो अपना पक्ष होगा, यदि स्त्रीके प्रति राग होगा तो स्त्रीका पक्ष होगा-राग-द्वेषसे सच्चाईका दर्शन नहीं होता।

समर्थरामदासने कहा-अशोक वाटिकामें श्वेत कमल खिले हुए थे, हनुमानजीने कहा-नहीं लाल कमल थे। चलो जानकीजीसे पूछें-जानकीजी बोलीं-सफेद ही थे सब-के-सब। हनुमानजीने कहा-मैंने अपनी आँखसे देखा। जानकीजीने कहा-बेटा! उस समय तुम्हारी आँख लाल हो गयी थी-राक्षसोंके प्रति क्रोध आनेसे, इसलिये तुम्हें सफेद कमल भी रक्तवर्णके दीखे, रामदासकी आँख बिल्कुल ठीक है-राग-द्वेष रहित हैं, इसलिए उनको सफेद दीखते हैं।

राग-द्वेषसे सच्चे दर्शनकी उत्पत्ति नहीं होती। राग-द्वेषसे रहित बुद्धिसे सच्चे दर्शनकी उत्पत्ति होती है।

हमारे ब्रह्म-दर्शनमें न भूतका राग है, न आदमीका राग है, न देवताका राग है, इनका-उनका काम बनानेके लिये नहीं, इसमें सन्त नहीं, इसमें सम्प्रदाय नहीं, इसमें प्रान्त नहीं, इसमें भौगोलिक परिच्छेद नहीं भौतिक, कालिक परिच्छेद नहीं कि दो हजार वर्ष पुरानीवाली संस्कृति फिर लौट आवे, दो हजार बाद वाली न आने पावे-कालिक परिच्छेद नहीं, मजहबी, जाति, पारिवारिक परिच्छेद नहीं। यह तो असली सत्य है। इसको कैसे पहचानें?

आओ! असली सत्यको पहचानें-

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा

अन्वय और व्यतिरेक उसको पहचाननेकी युक्ति है। भागवतमें सर्वत्र इस युक्तिका आदर किया गया है, कम-से-कम बीस जगह अन्वय-व्यतिरेकवाली युक्ति वर्णन है। पहले ही श्लोकमें है-

अन्वयादितरतश्च। 1.1.1

अब अन्वय व्यतिरेक क्या है इसको देखो! इसके लिए तीन दृष्टि आपके सामने रखता हूँ, उनको आप ध्यानमें लो!

जैसे कार्यमें उपादान अनुगत होता है-एक दृष्टि।

कार्य क्या है? जैसे आपने गूंथे हुए आटेसे एक औरत बनायी, एक मर्द बनाया, और एक घोड़ा बनाया, एक गधा बनाया-औरत, मर्द, घोड़ा, गधे की शक्लें बनाना हुआ कार्य और उसमें उपादान कारण हुआ गूंधा हुआ आटा। चाहे शक्ल-सूरत औरतकी हो या मर्दकी हो, चाहे घोड़े-गधेकी हो, जिसमें उपादानके रूपमें, मसालेके रूपमें, वजनदार चीजके रूपमें आटा ही सबमें अनुस्यूत है। सब आकारोंमें आटेका होना-अन्वय। कार्यमें उपादानका होना, मसालेका अपने अन्दर गढ़ी हुई शक्लमें रहनेका नाम अन्वय है। औरत, मर्द, घोड़े, गधेकी शक्ल मिटाकर चकनाचूर कर दिया तब क्या रहा? बोले-गूँथा आटा रहा। ये क्या हुआ? यह कार्यका कारणसे व्यतिरेक हुआ। जब शक्ल-सूरत बनी तब अन्वय था-उसमें उपादान तो मौजूद था ही-जब वह कार्य बिगाड़ दिये गये-उनका ध्वंस हो गया तब भी उपादानके रूपमें वही आटा मौजूद है-औरत, मर्द, हाथी, घोड़े-गधेको रौंद देनेसे वह रौंदा नहीं गया-वह ज्यों-का-त्यों।

कार्यमें कारणका अन्वय और कार्यसे कारणका व्यतिरेक। व्यतिरेक माने जुदा होना। कार्यके जन्मसे कारणका जन्म नहीं, कार्यकी स्थितिसे कारणकी स्थिति नहीं, कार्यके ध्वंससे कारणका

ध्वंस नहीं। कार्यकालमें कार्यके रोम-रोममें अनुगत है और कार्यका सत्यानाश होनेके बाद स्वयं अपने स्वरूपमें कारण रूपसे प्रतिष्ठित है। यह अन्वय--व्यतिरेककी एक दृष्टि है।

अब दूसरी दृष्टि देखो वह है-द्रष्टा और दृश्यकी। जहाँ जड़में कार्य-कारण भाव होता है, वहाँ उपादन रूपसे कारण कार्यमें अनुगत होता है, लेकिन जहाँ चेतन कारण होता है, माने द्रष्टा कारण है-कोई ऐसा दृश्य नहीं होता जिसमें द्रष्टा न हो। देखनेवाला न हो तो दीखनेवाली चीज किसको दीखेगी? अन्धेको? जड़ अन्धा होता है और चेतन आँखवाला होता है, चेतन कहते हैं प्रकाशकको और जड़ कहते हैं प्रकाश्यको। जितना भी दृश्य होता है उसको सत्तालाभ करनेके लिये चेतनका होना जरूरी होता है। दृश्यके कण-कणमें, अणु-अणुमें, प्रत्यय-प्रत्ययमें चेतन अनुगत है। बिना चेतनके दृश्य-वस्तु होती ही नहीं। परन्तु जब सम्पूर्ण दृश्य गायब हो जाता है, नहीं रहता है उस समय दृश्यके अभावका प्रकाशक कौन है? चेतन है-भला!

जैसे स्वप्नका दृश्य द्रष्टासे प्रकाशित होता है, दृश्यमें द्रष्टा अनुगत है, स्वप्नके दृश्यमें द्रष्टाका अन्वय है और स्वप्न मिट जानेपर भी द्रष्टा है, माने स्वप्नके मिटनेसे द्रष्टा नहीं मिटा, इसलिए दृश्यसे द्रष्टा व्यतिरिक्त है। दृश्यमें द्रष्टाका अन्वय है और द्रष्टा दृश्यसे व्यरिक्ति है, इसमें एक वेदान्तकी बात याद दिलाकर आगे बढ़ता हूँ-

जैसे जड़ जहाँ कार्याकार होता है, वहाँ वह कार्याकार परिणामसे प्राप्त होता है और चेतन जहाँ दृश्याकार होता है वहाँ वह परिणामको प्राप्त नहीं होता केवल विवर्तको प्राप्त होता है, माने जड़ और चेतनका कार्य-कारण भाव कभी नहीं हो सकता, अगर चेतनको

परिणामी मानें तो परिणामका प्रकाशक चेतन होगा, परिणाम चेतन नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब हम जड़को प्रकृतिको कारण मानते हैं, तब तो परिणामी मानते हैं उसको और जब चेतनको कारण मानते हैं जगतका, तब परिणामी नहीं मानते हैं; विवर्ती मानते हैं। उसमें विरुद्ध कर्त्तार हो रहा है–विरुद्धं वर्त्तते–इति विवर्त्तः–चेतन स्वरूपके विपरीत दिखायी पड़ रहा है–इसलिये इसका नाम विवर्त्त है–विवर्त रूप दृश्यमें द्रष्टाका अन्वय है। द्रष्टाके बिना दृश्य रूप विवर्त भी प्रकाशित नहीं हो सकता, लेकिन जो द्रष्टा है–वह विवर्त्त रूप दृश्यसे व्यतिरिक्त है।

अब तीसरी बात देखो! दुनियामें हम प्यार–प्रेम करते हैं–इसमें सुख है, इसमें सुख है, इसमें सुख है। बोले–हम अपने प्यारेको सुख पहुँचाते हैं, क्योंकि हम अपने प्यारेको सुखी देखकर खुद सुखी होते हैं। अपना सुख न होवे तो प्यारेका सुख भी न होवे। अपनेको खूब दुःखी करके भी हम अपने प्यारेको सुखी करते हैं, प्यारेको सुखी देखकर अपना सारा दुःख मिट गया।

राधारानीके प्रेमकी क्या विशेषता? देखो यह भक्तिकी बात है कि वह अपनेको महाप्रलयकी आगमें डालकर भी कृष्णके चेहरे पर पसीनेकी एक बूँद न आवे ऐसा चाहती है, उनको दुःखी नहीं करना चाहती–दुःखकी छाया भी कृष्ण पर न पड़े, इसके लिए राधारानी अपनेको महाप्रलयकी आगमें डालनेको तैयार, लेकिन जब देखती हैं कि हमारे आगमें पड़नेसे कृष्णकी दुःखकी छाया दूर हो गयी तो वही आग उनके लिए आनन्दका महासागर बन जाती है।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं –
भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।।

बृ.2.4.5

इसका अर्थ यह है कि जहाँ-जहाँ दूसरेका सुख है, वहाँ-वहाँ अपना सुख अनुगत है। दूसरोंके सुखमें अपने सुखका अन्वय है, लेकिन जहाँ दूसरा कोई नहीं-सुषुप्तिमें, वहाँ अपना सुख शान्तिमें भी, विश्राममें भी, समाधिमें उन सबसे व्यतिरिक्त रहकर अपना सुख रहता है।

इसी सुखको, इसी चेतनको, इसी उपादानको, इसी सत् चित् आनन्दको आकार-विकारसे विनिर्मुक्त करते हैं, तब देश, काल, वस्तुके परिच्छेदसे रहित हो जाता है-इसी आत्माको ब्रह्म बोलते हैं, इसी आत्माको भक्त लोग ईश्वर बोलते हैं। अनन्तमें परिच्छिन्न वस्तु अपना स्थान छोड़ देती है, माने अनन्त परिच्छिन्न वस्तुका अस्तित्व नहीं है, अविनाशीमें परिच्छिन्न वस्तुका अस्तित्त्व नहीं है। अनन्त आनन्दमें परिच्छिन्न सुख और दुःखका अस्तित्व नहीं है। अखण्ड परिपूर्ण ब्रह्मको जाननके लिए अन्वय-व्यतिरेककी दृष्टिसे विचार करते हैं।

देखो, एक चीज ऐसी है उसको ढूँढ़ लो, कैसी? जो सब जगह रहती है और सब कालमें रहती है, और सब नाम-रूपमें रहती है-जब तुम जागते हो तब भी वह है, जब तुम सपना देखते हो तब भी वह है, और जब तुम बिल्कुल गाढ़ निद्रामें सो जाते हो तब भी वह है-जहाँ जाते हो वहाँ है; जहाँ रहते हो वहाँ है, तुम जब हो तब है, और जो तुम हो सो ही है-ऐसी एक वस्तु है-जो सबमें अन्वित है-सबमें रहकर सबसे न्यारी। ऐसी एक चीज दुनियामें है, अगर इस पहेलीको तुम जान लो, उसको पहचान लो-तो तुमको अभी ईश्वर मिलेगा भाई! हम नकद मालकी बात करते हैं भाई उधारकी बिल्कुल नहीं-जिसने इस ढंगसे परमात्माको ढूँढ़ लिया उसके यहीं बैठे-बैठे, इसी जगह हँसते-बोलते, देखते-सुनते उनको परमात्माकी प्राप्ति हो जायेगी,

केवल एक पहेली है परमात्मा। बस एक पहेली बूझनेसे परमात्मा मिल जाता है।

ब्रह्माको भगवान् नारायणने बताया कि देखो! तुम एकाग्र चित्तसे जो बात मैंने चार श्लोकोंमें कही है–उसमें निष्ठा कर लो। चाहे फिर तुम्हारे मनमें कितना भी संकल्प होवे, कितना भी विकल्प होवे, कैसी भी दुनिया बने या बिगड़े, तुम दिन–रात जीवोंका कर्म देखकर शरीर बनाते रहो, सृष्टि बनाते–मिटाते रहो, तुमको कभी मोह नहीं होगा। तुम जानोगे कि सब मसालेके रूपमें एक परमात्मा ही है, फिर तस्वीर चाहे जैसी बन जाय–मसालेका कुछ नहीं बनता–बिगड़ता है। इस प्रकार परमात्माने ब्रह्माजीको आदेश किया, उपदेश किया और ब्रह्माजीको जो नारायण रूप दिखाया था, उसको छुपा लिया। ज्यों भगवान्‌ने रूप छुपाया त्यों ब्रह्माजीने नमस्कार किया। अब तो ब्रह्माजीको मालूम पड़े कि सब परमात्माका स्वरूप है। जैसे बिना हुए यह तस्वीर बनी हुई थी परमात्मामें जीवकी–रस्सीमें साँपकी तस्वीर दीख रही थी, साँपकी तस्वीर खिंच गयी रस्सीमें। बिना साँपके हुये, वैसे ही ब्रह्माजी भी देखने लगे–सृष्टि बनाने लगे।

क्योंकि,

यस्मिन् श्रुते मते विज्ञाते सर्वं श्रुतं मतं विज्ञातं भवति।

ऋग्वेद 9.64-9.114

जिसने परमात्माको जान लिया, उसने सबकुछ जान लिया। परमात्माको जाननेके बाद कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता है।

❖

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज
द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

श्रीमद्भागवत	
भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	600.00
ईशानुकथा (नवम स्कन्ध)	30.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
मुक्ति स्कन्ध (एकादश स्कन्ध) (दो भागोंमें)	270.00
रास पंचाध्यायी	150.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	80.00
भागवतामृत	150.00
भागवत व्यंजन	50.00
भागवत सर्वस्व	80.00
गोपीगीत	100.00
वेणुगीत	40.00
युगलगीत	50.00
प्रणयगीत	60.00
गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	20.00
उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	80.00
ब्रह्म-स्तुति	85.00
हंसगीता (हंसोपाख्यान)	15.00
सद्गुरुसे क्या सीखें?	15.00
उनकी कृपा	20.00
ऊखल बन्धन लीला	50.00
सत्संग महिमा	20.00
प्रह्लाद चरित	60.00
उद्धव व्रजगमन	270.00
भागवत विमर्श (दो भागोंमें)	65.00
मानव जीवन और भागवत धर्म	100.00
गर्भ स्तुति	60.00

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी.जी. खेरमार्ग, मालाबार हिल, मुम्बई-400006

फोन : (022) 23682055 (समय 11 से 6 बजे तक) मो. : 09619858361

शाखा कार्यालय : श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर, मोतीझील

वृन्दावन-281121, फोन : (0565) 3205722, मो. : 09837219460



अखण्डानन्द सरस्वती

मैं-ही-मैं

(चतुःश्लोकी भागवत)

..........चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश भगवान् नारायणने चतुर्मुख ब्रह्माको करुणा करके किया; वैसे ही परमपूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजीने जन सामान्य जिज्ञासुओं, साधकों, भक्तों पर अनुकम्पा करते हुए 'चतुःश्लोकी भागवत'के अर्थोंको सरल, सरस कर दिया।

प्रस्तुत है चतुःश्लोकी भागवत 'मैं-ही-मैं'के रूपमें-सुधीजन लाभ लें.......

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

सत्साहित्यप्रकाशनट्रस्ट

आनन्द कानन प्रेस

टेढ़ीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337